प्रवचन-२००, गाथा-१६८-१६९, श्लोक २८४, रविवार, आषाढ़ कृष्ण ६, दिनांक ०२-०८-१९८०

नियमसार, गाथा १६८। अधिकार सूक्ष्म है परन्तु कहने का आशय ऐसा है कि सर्वज्ञ सब जानते हैं। ऐसे सर्वज्ञ कथित हों और उनके अतिरिक्त कुछ जाने नहीं और सर्वज्ञ नाम धरावे, वह अज्ञानी है। जिसे सर्वज्ञ की श्रद्धा करना है, उसे सर्वज्ञ सब जानते हैं- द्रव्य जानते हैं, गुण जानते हैं। अर्थपर्याय अर्थात् आकार बिना की अनन्त गुण की पर्याय को जानते हैं और व्यंजनपर्याय भी जिसे जो हो, उसे वे जानते हैं। ऐसा सिद्ध करने में सर्वज्ञपना सिद्ध करना है और सर्वज्ञ की श्रद्धा करानी है कि सर्वज्ञ ऐसे होते हैं। फेरफारवाले सर्वज्ञ हों, वे सर्वज्ञ नहीं हैं, ऐसा यहाँ कहना है।

संसारप्रपंचवाले जीवों को होती हैं। क्या कहते हैं ? व्यंजन अर्थात् आकृति। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव, नर, नारकी इसे होती हैं। ऐसा यहाँ लेना। नैगमनय से सबको होते हैं, ऐसा आरोप से पहले १८वीं गाथा में कथन आ गया है। नैगमनय से तो सबको भूतकाल की अशुद्धता भी वर्तमान सिद्ध में कहने में आती है। भूतकाल की अशुद्धता (देखकर)... आहाहा! वर्तमान में सिद्ध को भी अशुद्धता है, ऐसा नैगमनय से कहने में आता है। यह ज्ञान कराने के लिये है। तीनों काल का ज्ञान जिसे हो, सर्वज्ञ एक समय में उसकी शक्ति, उनकी शक्ति तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष जाने, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। ऐसे आत्मा की सर्वज्ञ श्रद्धा कराने के लिये सर्वज्ञ का विषय क्या है, यह बतलाते हैं। आहाहा!

अब यहाँ तो यह आया। **व्यंजनपर्यायें पाँच प्रकार की संसारप्रपंचवाले जीवों को होती हैं,...** नारकी, मनुष्य, देव आदि को होती है। सिद्ध को नहीं। यहाँ ऐसा लिया है। अशुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्याय किसे होती है ? और जाननेवाला कौन पूर्ण है ? यह बतलाना है और उस सर्वज्ञ की श्रद्धा करानी है। सर्वज्ञ ऐसे हैं। कोई अकेले द्रव्य की बात करे, वस्तु की बात करे, परन्तु पर्याय क्या है, उसे जाने नहीं। पर्याय में भी व्यंजनपर्याय अर्थात् आकृति, अर्थपर्याय अर्थात् अनन्त गुण की आकृति (परिणति)। एक प्रदेश गुण के अतिरिक्त। ऐसा विस्तार सर्वज्ञ जानते हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई यह वस्तु नहीं जानते। आहाहा! इस कारण से यह मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। अपने लिये पुस्तक बनायी है। उसमें यह कहा कि सर्वज्ञ कैसे हैं ? यह साधारण बात नहीं है, प्रभु! एक समय में तीन काल-तीन लोक और जिसकी-जिसकी अवस्था व्यंजन-आकृति उसे

उस प्रकार से और जिसके व्यंजन नहीं, साधारण छहों द्रव्यों को अर्थपर्याय है, उसे उस प्रकार से। केवली भगवान उस प्रकार से जानते हैं। आहाहा! ऐसा कभी पढ़ा नहीं होगा, सुना नहीं होगा।

सर्वज्ञ परमेश्वर। तेरी शक्ति सर्वज्ञ है, प्रभु! तू ज्ञानस्वभावी आत्मा है। ज्ञानस्वभावी तो सर्व को जाने। किसी को जाने बिना रहे नहीं। किसी का कुछ करे नहीं और किसी को जाने बिना रहे नहीं। आत्मा का स्वभाव, ज्ञानस्वभाव अपने अतिरिक्त किसी का करे नहीं और सर्व को जाने। जाने सर्व को, करे नहीं किसी का, ऐसा तेरा स्वभाव है। भगवान सर्वज्ञ की बात करते हैं, परन्तु तेरी चीज भी ऐसी है। आहाहा!

यह **नरनारकादि व्यंजनपर्यायें पाँच प्रकार की संसारप्रपंचवाले जीवों को होती हैं, पुद्गलों को स्थूल-स्थूल आदि स्कन्धपर्यायें होती हैं...** यह शरीरादि। बाहर में यह दिखाब सब। उन पुद्गलों को स्थूल-मोटी इत्यादि स्कन्ध पर्यायें होती हैं। **और धर्मादि चार द्रव्यों को शुद्ध पर्यायें होती हैं;...** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल को भी शुद्धपर्याय होती है। ओहोहो! पर्याय में भी शुद्ध और अशुद्ध, अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय किसमें हैं? और वह भगवान एक समय में सब जाने, ऐसी ताकत है और ऐसी सर्वज्ञ की ताकत है, (ऐसे) सर्वज्ञ की श्रद्धावाले को उस ताकत की श्रद्धा होती है और अन्दर में जाता है तो वह सर्वज्ञ आत्मा ही है, तो आत्मा ही ऐसे स्वभाववाला है। आहाहा! इसके लिये बात करते हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिये यह पुस्तक बनायी। यह कुछ वार्ता नहीं। आहाहा! यह क्रियाकलाप की साधारण बात नहीं है। परन्तु सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक, उसकी एक-एक समय की व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय भिन्न-भिन्न जाने। वह भी ज्ञेय में प्रवेश किये बिना और ज्ञेय ज्ञान में आये बिना (जानते हैं)। नेत्र है वह पर को जाने, परन्तु पर में प्रवेश किये बिना नेत्र जानता है और परवस्तु आँख में आये बिना ज्ञात होती है। परवस्तु ज्ञात होती है। ऐसे जाने तो आँख में आती है? परवस्तु नेत्र में आये बिना नेत्र जानता है। वैसे ही सर्वज्ञ लोकालोक को जानते हैं। उनमें सर्वज्ञपने का प्रवेश किये बिना जानते हैं और लोकालोक ज्ञान में आये बिना ज्ञान जानता है। आहाहा! यह कहीं मुफ्त बात नहीं करते। साधारण ऐसी बात... व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय... आहाहा! कहने का आशय तो बहुत सूक्ष्म है।

सर्वज्ञ तो एक-एक जो-जो पर्याय (होती है), जिसकी अर्थपर्याय अर्थात् प्रदेशत्वगुण के अतिरिक्त अनन्त गुण की पर्याय, एक द्रव्य में अनन्त गुण में प्रदेश गुण के अतिरिक्त अनन्त गुण की पर्याय को अर्थपर्याय कहते हैं। इस अर्थपर्याय को भी केवलज्ञान जानता है। छहों द्रव्य की एक समय में (जानते हैं) और व्यंजनपर्याय नर-नारकी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव को भी जानते हैं और वह व्यंजनपर्याय जिसमें नहीं है, उसे भी जाने कि नहीं है। सर्वज्ञ के ज्ञान में कोई बात बाकी नहीं रहती। आहाहा!

ऐसा सर्वज्ञस्वभाव, प्रभु! तेरा सर्वज्ञस्वभाव है कि कोई बात जाने बिना न रहे। एक रजकण और राग का करना तो है ही नहीं, परन्तु जाने बिना कोई बात रहे, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बात है। लोगों को साधारण बात लगे कि ऐसी बात क्या करे? परन्तु इस बात में माल है। आहाहा! एक तो वस्तु की स्थिति ऐसी बताते हैं। किसे व्यंजनपर्याय होती है और किसे अर्थपर्याय होती है यह (बताते हैं) और उस समय-समय की पर्याय सर्वज्ञ भगवान जानते हैं। उन सर्वज्ञ भगवान की श्रद्धावन्त है, वह भी मानता है। आहाहा! वहाँ तो अकेला रहता नहीं। आहाहा!

ज्ञान की विशालता एक समय में अनन्त द्रव्य और अनन्त पर्यायें। पर्याय ली। द्रव्य-गुण तो अनन्त हैं परन्तु एक-एक समय की पर्याय को भी भगवान समय-समय में भिन्न-भिन्न जैसे होती है, वैसे जानते हैं। आहाहा! ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। तेरा स्वभाव ही ऐसा है। तू ऐसा ही है। किसी का करना, ऐसा तू है नहीं। किसी को जाने बिना रहे, ऐसा तू नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म में सूक्ष्म एक समय की पर्याय भी तुझे ज्ञात हुए बिना नहीं रहती। आहाहा! इसमें कब निवृत्त हो? वस्तु ऐसी है, इसलिए कहते हैं। यह नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी (भावना के) लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरे लिये यह बनाया है। उसमें यह बात आयी है। यह व्यंजनपर्याय, अर्थपर्याय (ली है)। इसकी सूक्ष्मता, द्रव्य-पर्याय की सूक्ष्मता बतायी और उसे जाननेवाले सर्वज्ञ की सूक्ष्मता बतायी। दोनों की यथार्थ श्रद्धा करायी। उसमें कोई जरा भी फेरफार करे तो वह सर्वज्ञ को नहीं जानता। पुद्गल को स्थूल आदि स्कन्ध हो जाती है और धर्मादि चार द्रव्यों की शुद्ध पर्याय होती है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल को शुद्धपर्याय होती है।

इन गुणपर्यायों से संयुक्त ऐसे उस द्रव्यसमूह को जो वास्तव में नहीं देखता;...

आहाहा! देखो! आया। **इन गुणपर्यायों से संयुक्त ऐसे उस द्रव्यसमूह को जो वास्तव में नहीं देखता;—उसे (भले वह सर्वज्ञता के अभिमान से दग्ध हो तथापि) संसारियों की भाँति परोक्षदृष्टि है।** इस प्रकार से है, ऐसा न जाने और दूसरे प्रकार से जाने अथवा न जाने तो वह सर्वज्ञ नहीं है। आहाहा! सर्वज्ञ का अभिमानी है। आहाहा!

श्लोक-२८४

[अब, इस १६८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—]

(वसंततिलका)

यो नैव पश्यति जगत्त्रय-मेक-दैव,
काल-त्रयं च तरसा सकल-ज्ञ-मानी।
प्रत्यक्षदृष्टिरतुला न हि तस्य नित्यं,
सर्वज्ञता कथमिहास्य जडात्मनः स्यात्।।२८४।।

(वीरछन्द)

युगपत एक समय में नहिं देखे जो त्रिभुवन तीनों काल।
उस जड़ को दर्शन प्रत्यक्ष तथा सर्वज्ञ न किसी प्रकार॥२८४॥

[श्लोकार्थः—] सर्वज्ञता के अभिमानवाला जो जीव शीघ्र एक ही काल में तीन जगत को तथा तीन काल को नहीं देखता, उसे सदा (अर्थात् कदापि) अतुल प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है; उस जड़ आत्मा को सर्वज्ञता किस प्रकार होगी ?२८४।

श्लोक - २८४ पर प्रवचन

[अब, इस १६८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—]

यो नैव पश्यति जगत्त्रय-मेक-दैव,
काल-त्रयं च तरसा सकल-ज्ञ-मानी।
प्रत्यक्षदृष्टिरतुला न हि तस्य नित्यं,
सर्वज्ञता कथमिहास्य जडात्मनः स्यात्।।२८४।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **सर्वज्ञता के अभिमानवाला...** बात सूक्ष्म है। जैन परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। छह द्रव्य है नहीं, छह द्रव्य में गुण-पर्याय कितने, यह (बात) नहीं, पर्याय कितनी, कैसी। व्यंजन और अर्थ (पर्याय) कैसी किसे (होती है) वह भी नहीं। आहाहा! एक सर्वज्ञ परमेश्वर-जैन परमेश्वर ने यह जाना है। उसकी यह प्रतीति कराते हैं कि सर्वज्ञ ऐसे होते हैं। उससे कम, अधिक, विपरीत श्रद्धा सर्वज्ञ से अत्यन्त विपरीत है। यह कहते हैं।

सर्वज्ञता के अभिमानवाला जो जीव शीघ्र एक ही काल में तीन जगत को... देखो! **तथा तीन काल को नहीं देखता,...** आहाहा! तीन काल और तीन लोक, उसमें अलोक भी आ गया। एक समय में जो जानते नहीं, **उसे सदा (अर्थात् कदापि) अतुल प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है;...** अतुल-जिसकी तुलना नहीं, उसे प्रत्यक्ष दर्शन नहीं। **उस जड़ आत्मा को...** आहाहा! भगवान की बड़ी-बड़ी बातें करे और समझे नहीं कि छह द्रव्य है, व्यंजनपर्याय, उसे जाने ही नहीं। **उस जड़ आत्मा को सर्वज्ञता किस प्रकार होगी?** आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्य देखे हैं। वे किसमें हैं? वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हैं। एक-एक द्रव्य में अनन्त गुण, वे किसमें हैं? अनन्त-अनन्त गुण हैं।

रात्रि में प्रश्न हुआ था कि उसमें अनन्तानन्त गुण हैं। आहाहा! तीन काल के समय से भी अनन्तगुणे गुण हैं। प्रत्येक गुण की एक समय की पर्याय है। इसमें किसी को व्यंजनपर्याय और किसी को अर्थपर्याय (होती है)। ऐसे भिन्न-भिन्न द्रव्य को जो यथार्थ सर्वज्ञ है, वह जान सकता है। इसके अतिरिक्त सर्वज्ञ के अभिमानी इस बात को नहीं जानते, धर्म को जानते नहीं और धर्म की बातें करते हैं। ऐसी बातें करते हैं। छह द्रव्य और साधारण पर्याय, अर्थपर्याय साधारण और व्यंजनपर्याय तो अमुक को होती है। अनन्त पर्याय होती है और तीन काल में अनन्त होती है। आहाहा! ऐसा जाननेवाला सर्वज्ञ के अतिरिक्त—परमेश्वर त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त कोई है नहीं। आहाहा! उन्हें माननेवाला भी कितना निर्मानी होता है! आहाहा!

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिया है। ज्ञानी क्षायिक समकिती हो, चार ज्ञान के धनी मुनि हों, तो भी ऐसा मानते हैं (कि) मेरी पर्याय केवलज्ञान के समक्ष पामर है। आहाहा! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा लेख है। अरे! मैं कौन? चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना गणधरदेव अन्तर्मुहूर्त में करते हैं। आहाहा! तथापि अपने को ऐसा मानते हैं। मैं वस्तु द्रव्यरूप से प्रभु हूँ परन्तु पर्यायरूप से मैं पामर हूँ। मैं पर्यायरूप से पामर हूँ। आहाहा! गणधर जैसे चार ज्ञान (के धारक) और चौदहपूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करनेवाले ऐसा कहते हैं, मैं सर्वज्ञ की पर्याय के समक्ष पामर हूँ। आहाहा! यहाँ जहाँ थोड़ा-बहुत जानपना हो जाए, वहाँ अभिमान चढ़ जाता है कि हमें इतना आता है और हमें इतना आता है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! सर्वज्ञ के समक्ष गौतम गणधर ऐसा कहते हैं कि हम पामर हैं। जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना। बारह अंग किसे कहते हैं? एक अंग में अठारह हजार पद, एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक... आहाहा! ऐसे-ऐसे बारह अंग। उनमें दृष्टिवाद और पूर्ववाद में तो गजब बातें। उनकी जो अन्तर्मुहूर्त में रचना करे। आहाहा! आत्मा के ज्ञान की सामर्थ्य के समक्ष वह चीज़ कोई विशेष नहीं है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में उसकी रचना करे तो भी कहते हैं, मैं तो केवलज्ञान के समक्ष पामर हूँ। आहाहा!

यह यहाँ पूर्णता बतलानी है और पूर्णता बताकर अभिमानरहित सर्वज्ञ कैसे होते हैं, वह बताते हैं। समझ में आया? यह लगे कठिन। दया पालना, यह करना, यह इसमें कुछ आया नहीं। दया पालने का आया नहीं। जैसा सर्वज्ञ का स्वभाव तीन काल-तीन लोक की जैसी पर्याय है, वैसी जाने, ऐसे सर्वज्ञ को इस प्रकार से माने तो सर्वज्ञ की दया पाली कहलाये। आहाहा! बाकी दूसरे की दया पाले, मारे, वह तो है ही कहाँ? आत्मा पर की दया पाल सके, ऐसा तीन काल में नहीं होता। उसी प्रकार पर की हिंसा कर सके, यह तीन काल में नहीं होता, परन्तु उस सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति करके एक समय में तीन काल-तीन लोक अनन्त पर्यायसहित एक समय में भविष्य की असद्भूत अनन्त पर्याय, वर्तमान एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं। आहाहा! यह क्या बात है! अनन्त काल की असद्भूत पर्यायें अभी हुई नहीं। वे भी प्रत्यक्ष में असद्भूत और प्रत्यक्ष में देखे, ऐसे सर्वज्ञ भगवान हैं। आहाहा! ऐसी प्रतीति करे, उसे सर्वज्ञ है-ऐसी प्रतीति है। कम-ज्यादा करे तो

भी उसे सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं है। आहाहा! णमो अरिहन्ताणं की प्रतीति नहीं है। आहाहा! णमो अरिहन्ताणं किसे है? अरिहन्ताणं, अरिहन्त कैसे? तीन काल-तीन लोक देखे। कैसे?

जो अनन्त पर्यायें छह द्रव्य की हैं, उनकी पर्याय को (देखे)। द्रव्य-गुण तो देखे परन्तु पर्याय एक समय की पर्याय को भी वर्तमान में भूतकाल, भविष्य की अनन्त पर्यायें नहीं हैं, उन्हें एक समय में देखते हैं। आहाहा! ऐसे सर्वज्ञस्वभाव की अस्ति ऐसी है, ऐसा यहाँ सिद्ध कराते हैं, ऐसी श्रद्धा कराते हैं। यह बात नहीं करते। बातें नहीं कि यह ऐसा किया, उसमें लो ऐसी बातें किसलिए की। बात में माल है, भाई! समझ में आया? क्योंकि नयी बात कुछ समझ में नहीं आती। सूक्ष्म बात की, इसलिए ऐसी (बात) क्या (करते होंगे)? परन्तु यह कारण है। आहाहा! एक आत्मा सर्वज्ञ होने के योग्य और सर्वज्ञ हुए (वे) ऐसे होते हैं, ऐसी श्रद्धा कराते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष की श्रद्धा सच्ची कब होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करे तब होती है। आहाहा!

तीन काल-तीन लोक और उसकी व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय तथा भविष्य की अनन्त पर्यायें अभी हुई नहीं। अनन्त काल... अनन्त काल... के बाद होगी, उन्हें वर्तमान प्रत्यक्ष जानते हैं। वर्तमान प्रत्यक्ष भगवान जानते हैं। आहाहा! इस प्रकार सब णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करते हैं परन्तु अरिहन्त की ताकत कितनी है? किसे अरिहन्त कहना? और उनका वास्तविक स्वरूप क्या है? उसे जाने बिना अरिहन्त को माने, वह सब व्यर्थ है। आहाहा!

भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु को बालक या युवा या वृद्ध, ऐसा न देख। उसी प्रकार तू स्त्री, पुरुष या नपुंसक न देख। आहाहा! तेरा आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। उसकी सर्वज्ञ की शक्ति है, तो यह सर्वज्ञ की शक्ति पर्याय में प्रगटे तो तीन काल-तीन लोक की पर्याय भिन्न-भिन्न अर्थ-व्यंजनपर्याय को भिन्न-भिन्न जैसा है, वैसा जानते हैं। आहाहा! यह जैन का केवलज्ञान जैन का केवलज्ञान अर्थात् जैन में ही केवलज्ञान होता है। अन्यत्र कहीं होता नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ इसमें समा गये। दर्शन... **उस जड़ आत्मा को सर्वज्ञता किस प्रकार होगी?** यह श्लोक पूरा हुआ।

गाथा-१६९

लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ।।१६९।।

लोकालोकौ जानात्यात्मानं नैव केवली भगवान्।
यदि कोऽपि भणति एवं तस्य च किं दूषणं भवति।।१६९।।

व्यवहारनयप्रादुर्भावकथनमिदम्। सकलविमलकेवलज्ञानत्रितयलोचनो भगवान् अपुनर्भवकमनीयकामिनीजीवितेशः षड्द्रव्यसङ्कीर्णलोकत्रयं शुद्धाकाशमात्रालोकं च जानाति, पराश्रितो व्यवहार इति मानात् व्यवहारेण व्यवहारप्रधानत्वात्, निरुपरागशुद्धात्मस्वरूपं नैव जानाति, यदि व्यवहारनयविवक्षया कोऽपि जिननाथतत्त्वविचारलब्धः (दक्षः) कदाचिदेवं वक्ति चेत्, तस्य न खलु दूषणमिति।

तथा चोक्तं श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिः –

(अपरवक्त्र)

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।
इति जिन सकलज्ञ-लाञ्छनं वचनमिदं वदताम्वरस्य ते।।

तथाहि ह्न

भगवान केवलि लोक और अलोक जाने, आत्म-ना।
यदि कोइ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या॥१६९॥

अन्वयार्थ : [केवली भगवान्] (व्यवहार से) केवली भगवान [लोकालोकौ] लोकालोक को [जानाति] जानते हैं, [न एव आत्मानम्] आत्मा को नहीं -[एवं] ऐसा [यदि] यदि [कः अपि भणति] कोई कहे तो [तस्य च किं दूषणं भवति] उसे क्या दोष है ? (अर्थात् कोई दोष नहीं है।)

टीका : यह, व्यवहारनय की प्रगटता से कथन है।

'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहारनय पराश्रित है)' ऐसे (शास्त्र के) अभिप्राय के कारण, व्यवहार से व्यवहारनय की प्रधानता द्वारा (अर्थात् व्यवहार से व्यवहारनय को प्रधान करके), 'सकल-विमल केवलज्ञान जिनका तीसरा लोचन है और अपुनर्भवरूपी सुन्दर कामिनी के जो जीवितेश हैं (-मुक्तिसुन्दरी के जो प्राणनाथ हैं) ऐसे भगवान छह द्रव्यों से व्याप्त तीन लोक को और शुद्ध-आकाशमात्र अलोक को जानते हैं, निरुपराग (निर्विकार) शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं ही जानते'—ऐसा यदि व्यवहारनय की विवक्षा से कोई जिननाथ के तत्त्वविचार में निपुण जीव (-जिनदेव द्वारा कहे हुए तत्त्व के विचार में प्रवीण जीव) कदाचित् कहे, तो उसे वास्तव में दूषण नहीं है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री मुनिसुव्रत भगवान की स्तुति करते हुए ११४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

''[श्लोकार्थः—] हे जिनेन्द्र! तू वक्ताओं में श्रेष्ठ है; 'चराचर (जंगम तथा स्थावर) जगत प्रतिक्षण (प्रत्येक समय में) उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणवाला है' ऐसा यह तेरा वचन (तेरी) सर्वज्ञता का चिह्न है।''

गाथा -१६९ पर प्रवचन

लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ।।१६९।।

व्यवहारनय सिद्ध करते हैं।

भगवान केवलि लोक और अलोक जाने, आत्म-ना।
यदि कोइ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या॥१६९॥

टीका : यह, व्यवहारनय की प्रगटता से कथन है। 'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहारनय पराश्रित है)' ऐसे (शास्त्र के) अभिप्राय के कारण, व्यवहार से व्यवहारनय की प्रधानता द्वारा (अर्थात् व्यवहार से व्यवहारनय को प्रधान करके), 'सकल-विमल केवलज्ञान जिनका तीसरा लोचन है... आहाहा! **और अपुनर्भवरूपी सुन्दर कामिनी के जो जीवितेश हैं...** जीवित के ईश्वर हैं। आहाहा! **(-मुक्तिसुन्दरी के जो प्राणनाथ हैं)...**

भगवान... आहाहा! **ऐसे भगवान छह द्रव्यों से व्याप्त तीन लोक को और शुद्ध-आकाशमात्र अलोक को जानते हैं,...** व्यवहार सिद्ध करते हैं।

भगवान छह द्रव्य को, लोक को जानते हैं, अपने को नहीं जानते निश्चय से। व्यवहार से अपने को जाने तो तन्मय नहीं होता। पर को व्यवहार से जानते हैं, क्योंकि पर में तन्मय नहीं होता। उस प्रकार अपने को व्यवहार से जाने, तो तन्मय नहीं होता, ऐसा नहीं है। बात में अन्तर है। आहाहा! क्या कहा? '**सकल-विमल केवलज्ञान जिनका तीसरा लोचन है और अपुनर्भवरूपी सुन्दर कामिनी के जो जीवितेश हैं (-मुक्तिसुन्दरी के जो प्राणनाथ हैं) ऐसे भगवान छह द्रव्यों से व्याप्त तीन लोक को और शुद्ध-आकाशमात्र अलोक को जानते हैं, निरुपराग (निर्विकार) शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं ही जानते**'— आहाहा! क्या कहा? छह द्रव्य को लोक को जानते हैं, परन्तु अपने को नहीं जानते, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। ऐसा कहकर व्यवहार सिद्ध किया है। सर्वथा व्यवहार है ही नहीं, व्यवहारनय का विषय है नहीं, व्यवहारनय अभूतार्थ है, इसलिए व्यवहारनय का विषय नहीं—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहार से भगवान लोक-अलोक को जानते हैं; अपने को नहीं जानते। व्यवहार से अपने को नहीं जानते। व्यवहार से जाने तो तन्मय न हो जाएँ। अपने को निश्चय से जानते हैं; पर को व्यवहार से जानते हैं। आहाहा! किसे खबर क्या (होगा)? आहाहा! **निरुपराग (निर्विकार) शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं ही जानते**'— है? आहाहा! यह नय सिद्ध किया है। छह द्रव्य, उनके गुण-पर्याय, पहली व्यंजनपर्यायादि सर्व को जाने, ऐसा कहा, तो व्यवहार से पर को जानते हैं परन्तु व्यवहार से स्व को नहीं जानते। डाह्याभाई! व्यवहार से स्व को नहीं जानते। क्यों?

मुमुक्षु : क्योंकि वह उपचार हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन्मय हुए बिना निश्चय नहीं होता। दूर रहकर जानना, वह व्यवहार है। लोकालोक को दूर रहकर जानने का नाम व्यवहार है और अपने में तन्मय होकर जानना, वह निश्चय है। हसमुखभाई! कभी सुना नहीं होगा। वहाँ कहाँ है? पैसा-धूल धाणी में जिन्दगी (चली गयी)। आहाहा!

क्या कहा? भगवान त्रिलोकनाथ व्यवहारनय से अपने अतिरिक्त दूसरे छह द्रव्य,

उनकी व्यंजन पर्याय आदि सर्व को प्रत्यक्ष जानते हैं। अपने को नहीं जानते। है ? **शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं ही जानते...** व्यवहार से अपने को नहीं जानते। व्यवहार से अपने को जाने तो तन्मय नहीं होगा। दूर रह जाएगा। पर को व्यवहार से जानते हैं तो दूर रहते हैं। दूर रहकर पर को जानना, वह व्यवहार है और तन्मय होकर जानना, वह निश्चय है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! दोनों सिद्ध करते हैं। व्यवहार छह द्रव्य, छह द्रव्य की पर्याय, वह वस्तु है, वस्तु है। अकेला आत्मा ही है, ऐसा नहीं है। पर को जानने में पर में तन्मय होकर पर को नहीं जानता, दूर रहकर जानता है। और वह चीज़ वहाँ रहती है, यह आत्मा यहाँ है। उसे जाने, इसका नाम व्यवहार कहने में आता है और अपने को व्यवहार से नहीं जानते। आहाहा! शान्तिभाई! कभी सुना नहीं, कभी पढ़ा नहीं। ऐसी की ऐसी अभी तक मजदूरी की है। सब मजदूरी करते हैं न! क्या किया सबने ? आहाहा!

चैतन्य भगवान स्व-परप्रकाशक आत्मा है। अकेले पर को प्रकाशित करे, उसे व्यवहार कहने में आता है तो व्यवहार से स्व को प्रकाशित करे, ऐसा नहीं है। तब तो स्व से दूर रह जाता है। डाह्याभाई! समझ में आया ? आहाहा! निश्चय से स्व को जानते हैं। व्यवहार से पर को जानते हैं, ऐसा है। तो व्यवहार से पर को जानते हैं तो व्यवहार से स्व को जानते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कभी सुना नहीं होगा यह सब गाँव के पत्थर में। पत्थर-पत्थर है न ? जिसे जो धन्धा हो, उसे वह। हमारे मनसुख को बोरी के दाने का बोरी का उसमें वह भी बड़ा... दुकान में नहीं निकला था... यहाँ से पीछे जाना। कितनी बोरियाँ भरी हुई और बड़ा कोठार। आहाहा! अरे! प्रभु! तू कहाँ ? तू कौन ? तेरा क्या स्वरूप ? तेरी क्या मर्यादा ? आहाहा!

मुमुक्षु : आप ऐसा कहते हो कि जो ज्ञान स्व को नहीं जानता, अकेला पर को जानता है, वह अज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं-नहीं। वह दूसरी बात है। स्व को जाने बिना अकेले पर को जाने, वह अज्ञान। परन्तु स्व को जानता है, उसे व्यवहार कहना, उसमें तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए व्यवहार। परन्तु निश्चय से तन्मय होकर जानता है, इसलिए निश्चय। आहाहा! ऐसा मार्ग! सूक्ष्म बात है, भाई!

अन्दर तीन लोक का नाथ परमात्मा विराजता है। आहाहा! उसे तू हीन मत मान,

ऐसा कहते हैं। व्यवहार से पर को जाने, इतना ऐसा न मान। निश्चय से तुझे तू जानता है, ऐसा तू जान। अकेला पर को जानना, वह तो व्यवहार है। अकेला, हों! वैसे तो निश्चय स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव है। इस अपेक्षा से निश्चय से स्व को जानता है, उसमें पर का ज्ञान आ गया। समझ में आया? क्या कहा यह? निश्चय से स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव है, तो निश्चय से अपने को ही जानता है। पर को जानने का ज्ञान, वह भी अपना ज्ञान है। पर को जानने का ज्ञान भी अपना ज्ञान है। स्व का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान। स्व को जानना, वह निश्चय है। पर को जाने, ऐसा अपना ज्ञान वह तन्मय अपने में है, वह निश्चय है। परन्तु पर को जानता है और पर के साथ एक नहीं होना और दूर रहना, इसका नाम व्यवहार है। ऐसी बात है, हसमुखभाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! दिगम्बर आचार्यों ने गजब काम किया है।

ऐसा कहना चाहते हैं, प्रभु! तू जैसे पर को दूर रहकर जानता है, वैसे तू तुझसे दूर रहकर (तुझे) जाने, वह तो व्यवहार हुआ; निश्चय तो नहीं हुआ। नेत्र पर को जानता है, परन्तु पर में नेत्र जाता नहीं। आँख, आँख पर को जानती है परन्तु आँख पर में जाती नहीं; इसी प्रकार पर को जाने, वह परवस्तु आँख में आती नहीं। आती है? परन्तु यहाँ ऐसा कहते हैं कि चैतन्यरूपी नेत्र पर को जाने। एकमेक नहीं होता, इसीलिए इसका नाम व्यवहार कहते हैं। जानता है परन्तु पर अपेक्षा से उसे व्यवहार कहते हैं।

मुमुक्षु : ज्ञान तो सच्चा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान सच्चा है, व्यवहार से है वह। व्यवहारनय का विषय है। नहीं है, ऐसा नहीं। परन्तु निश्चयनय से अपने को नहीं जानता। आया?

शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं ही जानते— व्यवहार से अपनी आत्मा को नहीं जानता। समझ में आया? व्यवहार से पर को जानता है परन्तु व्यवहार से अपने को नहीं जानता। अपने को निश्चय से जानता है। आहाहा! पर को व्यवहार से भिन्न (रहकर) जानता है परन्तु परसम्बन्धी ज्ञान स्व-परप्रकाशक जो अपना है, उसे जाने तो वह निश्चय हो गया। आहाहा! अकेले पर को जाने, वह व्यवहार है। परन्तु पर का और स्व का ज्ञान यहाँ हुआ, वह अपना निश्चय अपने में है। पर के कारण से स्व-परप्रकाशक नहीं है। स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव—गुण है, तो उसे जाने, इसका नाम निश्चय है परन्तु स्व

को छोड़कर अकेले पर को जानना उसका नाम व्यवहार है और स्व को लक्ष्य में रखे बिना अकेले पर को जानना, वह मिथ्यात्व है। स्व को लक्ष्य में रखकर पर को व्यवहार से जानना, वह व्यवहारनय है। अरे! कितना करना? क्या कहा यह? स्व का लक्ष्य रखकर पर को जानना, वह व्यवहार ज्ञान सच्चा है। अपना लक्ष्य छोड़कर अकेले पर को जानना, वह मिथ्या है। आहाहा! यह तो सब कभी वहाँ सुना भी नहीं होगा। भाई इकट्ठे होकर कहीं ऐसी चर्चा भी करते नहीं आती होगी। पत्थर की बातें सब करे। यह तुम्हारी घड़ी की, इन्हीं हीरा-माणिक की। शान्तिभाई! आहाहा!

यह तो प्रभु! तेरी ऋद्धि तो देख! तेरा स्वभाव तो देख, नाथ! तेरा स्वभाव पर को जाने। जैसे पर को जाने, वैसे (स्व को) जाने ऐसा (स्वभाव) नहीं है। तेरा स्वभाव पर को जाने, वैसे आत्मा को जाने, ऐसा नहीं है। इस प्रकार यहाँ निषेध किया है। **शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं ही जानते**—आहाहा! अपने को जानता है, वह निश्चय से है। आहाहा! '**स्वाश्रितो निश्चयः पराश्रितो व्यवहारः**' ये दो शब्द आ गये हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! लोगों में यह प्रवृत्ति बन्द हो गयी है और बाहर की दया, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा में सब उलझ गये हैं। उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं मिलता। नुकसान है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से स्व को जाने और पर को न जाने, इसमें सब आ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को नहीं जानता, ऐसा सर्वथा नहीं है। व्यवहार से जानता है, यह सिद्ध करना है। नहीं तो फिर लोकालोक वस्तु अपने से भिन्न वह चीज़ ही नहीं है और उस चीज का यहाँ ज्ञान ही नहीं है, ऐसा हो गया। आहाहा!

अपना स्वरूप स्व-परप्रकाशक है। उसमें स्व और पर ज्ञात हों, वह निश्चय है। परन्तु अपने-स्व को जाने बिना अथवा स्व को जानकर अकेला व्यवहार पर को जानने में रुक जाए तो वह मिथ्या है। परन्तु पर को जानना, स्व को जानना, यह लक्ष्य में रखकर पर को जाने वह व्यवहारनय सच्चा है। आहाहा! इतना सब याद रखना? ऐसा मार्ग है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने लिये बनाया है। यह गाथा-श्लोक सारा नियमसार अपने लिये बनाया है।

प्रभु! अन्तर में अपने को देखे, वह निश्चय है। अपने को व्यवहार से नहीं देखता व्यवहार से देखे तो दूर रहता है। आहाहा! जैसे पर को व्यवहार से जानता है तो परवस्तु

दूर रहती है। पर को व्यवहार से जाने और दूर रहता है तो व्यवहार है। इसी प्रकार तू स्व को जानने में व्यवहार से (जानता है, ऐसा कहे) तो व्यवहार से आत्मा दूर रहे, ऐसा नहीं है। व्यवहार से आत्मा जानता नहीं, इतनी बात। क्योंकि तन्मय होता है तो वह व्यवहार नहीं है। तन्मय होता है, वह व्यवहार नहीं है। अन्दर एकमेक हो गया, वह निश्चय; वह व्यवहार नहीं है - इतना बतलाना है। आहाहा! जाने बिना रहता है, ऐसा भी नहीं है। पर को जानता है तो एक अपेक्षा से व्यवहारनय से पर को जानता है। एक अपेक्षा से पर को नहीं जानता। क्या (कहा)? अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। निश्चय से स्वभाव है। उसमें स्व-पर आये, यह निश्चय आ गया। स्व-परप्रकाशक स्वभाव में पर आया, वह निश्चय आ गया। वह व्यवहार नहीं है। परन्तु अपने को छोड़कर अकेले पर को देखना, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसा सुनकर... यह महिलाएँ निवृत्त नहीं होतीं। पूरे दिन पकाना होता है, लड़कों को सम्हालना... उन्हें ऐसी बातें। अरे रे! देह तो चला जाएगा, भाई! देह तो एक समय में छूट जाएगा। आहाहा!

यहाँ देखो न! यहाँ भाईलालभाई ऐसे चलते थे, जाते थे। ऐसे चले। उनके दामाद को चलकर मिलने गये। कुछ नहीं हुआ। जहाँ बैठे वहाँ कब असाध्य हुए, कुछ खबर नहीं। परन्तु सबकी सुनने पर नजर थी। मेरी नजर ऐसे गयी। कहा, भई यह क्या है? ऐसा कैसे है? असाध्य हो गये। भाईलालभाई असाध्य। गुजर गये। यहाँ इस खम्बे के पास थे। बाहर ले गये। फिर बाहर गुजर गये। डॉक्टर बहिन मधुरीबेन आयी। आहाहा! यहाँ रहने आये थे। क्या करे? स्थिति है, तद्नुसार होता है। असाध्य हो गये, असाध्य। ऐसे पड़े। ऐसा दिखायी दिया तो कहा ऐसे कैसे होता है इन भाई को? देखा तो असाध्य हो गये। उन्हें उठाकर बाहर ले गये। आहाहा! क्षण में बदलते देर लगती है? यह कहाँ आत्मा है? यह कहाँ आत्मा की चीज़ है? यह कहाँ आत्मा के साथ एकमेक है? आहाहा!

आत्मा और उसके-दोनों के बीच अत्यन्त अभाव है। भगवान आत्मा और शरीर दोनों के बीच में अत्यन्त अभाव है। उसे कभी स्पर्श भी नहीं करता। सुई में डोरा पिरोते हैं तो डोरा सुई को स्पर्श नहीं करता। डोरा सुई को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! क्यों?— कि वस्तु अनन्त है। यहाँ अनन्त को देखने में जैसे अनन्त है, वैसे देखना, इसका नाम सर्वज्ञ। अनन्त है तो अनन्त कब रहे? अपनी पर्याय अपने से क्षण-क्षण में होती है, पर

से नहीं। अनन्त पर्यायें अनन्त द्रव्यों की अपनी पर्याय अपने समय में अपने से है तो अनन्त रह सकते हैं। यदि पर से पर्याय होवे तो अनन्त नहीं रह सकते। आहाहा!

प्रत्येक पदार्थ अपनी अनन्त पर्यायसहित है। पर्याय-विशेष बिना द्रव्य नहीं होता। विशेष अर्थात् पर्याय। किसी समय में कोई पदार्थ अपनी विशेष पर्याय बिना नहीं होता, तो फिर दूसरा द्रव्य क्या करे? आहाहा! गजब बात है, भाई! इस अँगुली में एक-एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! आत्मा ने कर्म को स्पर्श नहीं किया। भाषा को आत्मा छूता नहीं। छूता नहीं अर्थात् स्पर्शता नहीं। आहाहा! वस्तु अस्ति है। अस्ति है तो उसकी अपनी वर्तमान पर्याय स्वयं से होती है तो अस्तिपना रह सकता है। अपनी विशेष दशा सामान्य में विशेष पर से होवे तो सामान्य भी नहीं रह सकता। आहाहा! गजब बात है। वीतरागमार्ग! एक सुई को डोरा छूता नहीं - स्पर्शता नहीं। सिलता है न, सिलता? उस सुई को डोरा छूता नहीं और डोरा वस्त्र को छूता नहीं। आहाहा! ऐसी अनन्तता पृथक्ता, अपनी सामान्य-विशेष पर्यायसहित, अपना कायमस्वरूप वर्तमान पर्यायसहित (जाने)। आहाहा!

वर्तमान पर्याय बिना का कोई द्रव्य नहीं है। आहाहा! वर्तमान पर्याय बिना का द्रव्य नहीं है तो पर्याय किसकी करे? स्व, स्व की करता है; पर, पर की करता है। आहाहा! गजब बात है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! क्योंकि दो के बीच अत्यन्त अभाव है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म में सूक्ष्म बात केवलज्ञानी भगवान ने एक समय में प्रत्यक्ष देखी है। आहाहा! छद्मस्थ तो फिर वीतराग की वाणी सुनकर माने, तब माने। यहाँ तो परमात्मा ने तो एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे हैं। अपनी पर्याय अपने से होती है। पर्याय बिना का द्रव्य नहीं रहता। पर्याय विशेष है। विशेषपना, वह उसका स्वभाव है। आहाहा! कोई भी विशेष हो, उसे भगवान जाने बिना नहीं रहते। और अपना विशेष और पर को जाने, अपने में तन्मय होकर जानते हैं, वह निश्चय है और तन्मय हुए बिना पर को जाने, इसका नाम व्यवहार है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म श्लोक है।

कुन्दकुन्दाचार्य सर्वज्ञपने की प्रतीति की है कि ऐसे सर्वज्ञ होते हैं, ऐसे केवली होते हैं, उन्हें मैं मानता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और ऐसे केवली दूसरे माने और मनावे... सच्ची बात। केवली अर्थात् भूत, वर्तमान जाने, भविष्य को न जाने। भविष्य में तो जैसा

होनेवाला है, जैसे आत्मा स्वयं करना चाहे, वैसे हो सकता है। परमाणु में भी करना चाहे, वैसे हो सकता है, (ऐसा नहीं)। भगवान ने तीन काल-तीन लोक देखे हैं। कोई कर सकता है, ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय क्रम में आनेवाली हो, वही आती है। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात परमात्मा के सिवाय, सर्वज्ञदेव के सिवाय कहीं नहीं है। दूसरे तो पागल कहें। स्पर्श नहीं करता? यह तो सब चलता है न! यह सब करते हैं न। इस मशीन से दर्जी सिलता है, कुम्हार घड़ा बनाता है, कपड़ेवाला बुनकर कपड़ा बुनता है। सब झूठा है। आहाहा! सब सबकी पर्याय उस-उस समय में अपनी सामान्य में से विशेष होता है। दूसरे के सामान्य में से यह विशेष होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा भगवान अपने को जानते हुए पर को भी इस प्रकार जानता है। पर में मिले बिना व्यवहार से पर को जानता है, ऐसे व्यवहार से अपने को जानता है - ऐसा नहीं है। अपने को तन्मय होकर जानता है, इसलिए निश्चय है। आहाहा!

ऐसा यदि व्यवहारनय की विवक्षा से कोई जिननाथ के तत्त्वविचार में निपुण जीव (-जिनदेव द्वारा कहे हुए तत्त्व के विचार में प्रवीण जीव) कदाचित् कहे, तो उसे वास्तव में दूषण नहीं है। व्यवहार से पर को जानता है और व्यवहार से अपने को (जानता) नहीं, ऐसा कोई समझकर कहे तो उसे कोई दूषण नहीं है। आहाहा! कोई प्रवीण कहा, हों! कहा? **निपुण... तत्त्वविचार में निपुण...** आहाहा! तत्त्व को विचारने में निपुण। कोई ऐसा कहे कि व्यवहार से पर को जानता है और अपने को नहीं जानता तो उसे दूषण क्या देना? अपने साथ व्यवहार से तन्मय नहीं है। निश्चय से तन्मय है। अपनी एक-एक पर्याय अपने में तन्मय है, उस स्व को जानना, वह निश्चय है और यह आत्मा पर को जानता है, ऐसा कहना, परन्तु पर में जाता नहीं। आँख परज्ञेय में जाती नहीं। ज्ञेय आँख में आता नहीं। इसी प्रकार ज्ञान पर को जाने तो पर में ज्ञान जाता नहीं और पर जाने, वह ज्ञान में आता नहीं। इस कारण से व्यवहार कहने में आया है। निश्चय से... आहाहा! **कदाचित् कहे, तो उसे वास्तव में दूषण नहीं है।**

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री मुनिसुव्रत भगवान की स्तुति करते हुए ११४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— यह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)